दर्शन का इतिहास
78 साधारण भाषा दर्शन,
व्हीटन कॉलेज के डॉ. आर्थर होम्स द्वारा

पिछले कुछ हफ़्तों में, हम 19वीं सदी से 20वीं सदी के एंपिरिसिज़्म के पॉज़िटिविस्ट मूवमेंट के डेवलपमेंट को ट्रैक कर रहे हैं, जिसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि सभी नॉलेज क्लेम को उस स्टैंडर्ड को पूरा करना चाहिए जिसे एंपिरिकल साइंस कहा जाता है। और असल में, यह लॉजिकल पॉज़िटिविज़्म में सबसे ऊपर है। हमने कुछ ऐसी चीज़ों के बारे में कमेंट किया है जिनकी वजह से लॉजिकल पॉज़िटिविज़्म खत्म हो गया, और उनमें से एक आइडियल लैंग्वेज फ़िलॉसफ़ी से अलग ऑर्डिनरी लैंग्वेज फ़िलॉसफ़ी का उदय था।

पॉज़िटिविस्ट लोगों के लिए आइडियल यह था कि हम अपने ज्ञान को ऐसी भाषा में रखें जो सभी तरह के फालतू मतलबों से आज़ाद हो, क्योंकि सिंबल को साफ़ एंपिरिकल पॉइंट्स के रेफरेंस में डिफाइन किया जाता है, और आपसी रिश्तों को फॉर्मल लॉजिकल इनफेरेंस के तौर पर दिखाया जाता है। और इसलिए सिंबॉलिक लॉजिक का इस्तेमाल एक तरह की फॉर्मल लॉजिकल तरह की आइडियल भाषा थी। खैर, जैसा कि मैं कहता हूँ, इससे लॉजिकल पॉज़िटिविस्ट मूवमेंट और ऑर्डिनरी लैंग्वेज मूवमेंट शुरू हुआ, बाद वाले, विट्गेन्स्टाइन और दूसरों ने, जिनके बारे में हम आज बात करेंगे, इसके खिलाफ रिएक्ट किया, इस बात पर ज़ोर देते हुए कि आइडियल भाषा बहुत ज़्यादा रिडक्शनिस्ट है।

आपको याद होगा कि क्विन ने रिडक्शनिज़्म पर एतराज़ जताया था। यह बहुत ज़्यादा रिडक्शनिस्ट है। सच तो यह है कि भाषा अपने आम इस्तेमाल में कई अलग-अलग तरह के काम करती है, न कि सिर्फ़ एंपिरिकल डेटा के एनालिटिक और डिस्क्रिप्टिव काम।

और इसलिए, भाषा के इस्तेमाल की ज़्यादा वैरायटी की अपील है। अब, शुरू में, यह समझना आसान नहीं है, इसलिए मुझे लगता है कि अगर हम एक खास उदाहरण से शुरू करें, यानी धार्मिक भाषा पर बहस, तो यह मददगार हो सकता है, जिसे हम आयर की 'लैंग्वेज, ट्रुथ, एंड लॉजिक' में अपने एजेंडा के अधूरे हिस्से के ज़रिए समझ सकते हैं, जहाँ आपको याद होगा पिछली बार चैप्टर 6, एथिक्स एंड थियोलॉजी पर कमेंट करते हुए, हम एथिक्स के बारे में उनके ट्रीटमेंट के बारे में बात करने में कामयाब रहे थे, लेकिन थियोलॉजी के बारे में नहीं। खैर, वह जो बताते हैं वह बहुत सीधा-सादा ब्यौरा है, और आप चाहें तो इसे ऐसे कह सकते हैं, कि मतलब के लिए वेरिफ़िएबिलिटी क्राइटेरिया को देखते हुए, असल मतलब के लिए, यह प्रपोज़िशन कि भगवान हैं, असल में मतलब वाली नहीं है, क्योंकि यह सीधे या प्रिंसिपल तौर पर एंपिरिकली वेरिफ़ाई नहीं किया जा सकता।

भगवान कोई इंद्रिय-विषय नहीं है। असल में, भगवान शब्द एक मेटाफिजिकल शब्द है, जिसका कोई मतलब नहीं है, क्योंकि इसका कोई एंपिरिकल रेफरेंस नहीं है। इसलिए, भगवान के बारे में किसी भी बात का कोई असल मतलब नहीं है।

तो सारी थियोलॉजिकल भाषा, भगवान के बारे में भाषा, सारी थियोलॉजिकल भाषा का कोई असल मतलब नहीं है। अब, इसका नतीजा यह नहीं है कि वह नास्तिक या अज्ञेयवादी है; इसका नतीजा यह है कि आस्तिकता, नास्तिकता और अज्ञेयवाद सभी एक जैसे बेमतलब हैं। वे कुछ भी साबित नहीं करते।

कहने का मतलब है, कोई भी चीज़ जो असल में मतलब की हो। नतीजा यह है कि धर्म और साइंस के बीच असल में कोई लॉजिकल झगड़ा नहीं है, क्योंकि साइंस चीज़ों पर ज़ोर देता है, लेकिन धर्म नहीं। तो कोई झगड़ा कैसे हो सकता है? और नतीजा यह है कि धार्मिक अनुभव कोई सबूत नहीं दे सकता, क्योंकि धार्मिक अनुभव साइकोलॉजिकल हालत के बारे में बात कर रहा है, धार्मिक अनुभव के बारे में भाषा, साइकोलॉजिकल हालत के बारे में बात कर रहा है, जिसे एंपिरिकल तरीके से बताया जा सकता है, लेकिन इस तरह के अनुभव के बारे में बात करने से हमें भगवान का एंपिरिकल रेफरेंस नहीं मिलता।

और वह इस बारे में बात करते हैं कि कैसे रहस्यवादी, क्लासिक तरीकों से, ईश्वर के बारे में ऐसा कहते हैं जिसे समझा नहीं जा सकता, जिसे बताया नहीं जा सकता। हम ईश्वर के बारे में सिर्फ़ नकार के तौर पर ही बात कर सकते हैं। इसलिए, कोई असल में मतलब वाली धार्मिक भाषा नहीं है।

अब, यह आयर का हिसाब था, और इसे 1944 में जॉन विजडम के एक आर्टिकल में दोहराया गया था, जिसका नाम था 'गॉड्स'। यह ब्रिटिश जर्नल्स में से एक, 'प्रोसीडिंग्स ऑफ द अरिस्टोटेलियन सोसाइटी' में छपा था, जिसमें उन्होंने कहा था कि गॉड, या देवताओं पर इस तरह की चर्चा, फैक्ट्स से ज़्यादा लोगों की भावनाओं से जुड़ी होती है। फैक्ट्स से ज़्यादा भावनाओं से।

है । अब, यह जॉन विजडम का आर्टिकल था जिसने एक चर्चा शुरू की जो काफी मशहूर हो गई है। मेरा मानना है कि यह ओरिजिनली BBC पर था, और इसके पीस बार-बार प्रिंट और रीप्रिंट किए गए हैं ।

आप उन्हें धर्म के दर्शन की हर तरह की किताबों में पाते हैं। लेकिन इस यूनिवर्सिटी की चर्चा में जो शामिल था, या जिस पर चर्चा हो रही थी, वह थियोलॉजी और झूठ का विषय था। थियोलॉजी और झूठ।

और आप साफ़ तौर पर मतलब का एंपिरिसिस्ट क्राइटेरिया देख सकते हैं जो इसे दिखाता है। अब, डिस्कशन में तीन लोग शामिल थे। उनमें से एक थे एंटनी फ्लू, और मैंने उनके नाम बोर्ड पर लिख दिए हैं ताकि आप उन्हें पकड़ सकें।

उनमें से एक थे एंटनी फ्लू, जिन्होंने यह समझने की कोशिश की कि एक विश्वासी, एक शक करने वाले से भगवान के बारे में कैसे बात करता है, इसके लिए उन्होंने एक अदृश्य माली की कहानी सुनाई। एक अदृश्य माली। कहने का मतलब है, कुछ खोजकर्ता एक ऐसी जगह पर आते हैं जहाँ ज़मीन का एक टुकड़ा होता है जो दीवार या बाड़ या ऐसी ही किसी चीज़ से घिरा होता है , और साफ़ तौर पर उसकी देखभाल की जा रही है ।

इसकी खेती की गई है। इसकी निराई की गई है। एक शब्द में कहें तो, इसकी बागवानी की गई है।

और इसलिए वे देखना चाहते हैं कि यह कौन कर रहा है। और उन्हें कोई नहीं मिलता। वे इधर-उधर घूमते रहते हैं, और कोई नहीं दिखता।

और इसलिए वे खुद से एक इनविज़िबल माली के बारे में बात करने लगते हैं। यही एक्सप्लेनेशन वे सोचते हैं। अब, वेरिफ़िएबिलिटी, फ़ल्सिफ़िएबिलिटी के मामले में , आप क्या कहने वाले हैं? आप एंपिरिकल डेटा के साथ एक इनविज़िबल माली के होने को कैसे गलत साबित कर सकते हैं? यह मुमकिन ही नहीं है।

तो, यह वह तरीका है जिससे मानने वाले भगवान की देखभाल और भगवान के प्यार के बारे में बात करते हैं। ताकि भगवान की कृपा और काम की तस्वीर में शामिल हर चीज़ को इस तरह की कहानी में शामिल किया जा सके। यह अनुभव से साबित नहीं होता, लेकिन देखिए, उन खोज करने वालों को यह एक बहुत ही मतलब वाली चर्चा लगती है।

दूसरे पार्टिसिपेंट RM हरे थे। RM हरे। और वे धार्मिक चर्चा को सिर्फ़ भावनाओं की अभिव्यक्ति के तौर पर मानने की समझदारी के ज़्यादा करीब आते हैं।

शायद एग्ज़िस्टेंशियल फ़ीलिंग, लेकिन फिर भी फ़ीलिंग । उनकी कहानी में, जो कहानी वे बताते हैं, एक ऑक्सफ़ोर्ड डॉन, एक ऑक्सफ़ोर्ड प्रोफ़ेसर की, जिसकी पलकें झपकने की एक खास आदत है। अब, पलक झपकाना एक तरह की बेतुकी बात है।

यह कुछ ऐसा है जिस पर उसे यकीन है। इस मामले में उसे ऐसा लगता है कि कोई उसे मारने की कोशिश कर रहा है। और यही उसके सारे बर्ताव को कंट्रोल करता है।

वह हमेशा ध्यान रखता है। इससे पता चलता है कि वह कैसा बर्ताव करता है। आप देखिए, वह अदृश्य माली कुछ चीज़ों का एक्सप्लेनेशन था।

लेकिन अब हेयर किसी व्यक्ति के व्यवहार की वजह के बारे में बात कर रहे हैं। अदृश्य माली एक तरह से अलग-थलग देखने वाले थे। लेकिन यह ऑक्सफ़ोर्ड डॉन इसमें बहुत ज़्यादा शामिल है ।

उसे परवाह है। यह उसके लिए बहुत मायने रखता है। यहाँ यह धार्मिक चिंता का विषय है।

अब, ज़ाहिर है, वह जो कह रहा है वह कोई ऐसा दावा नहीं है जिसे अनुभव से साबित किया जा सके या गलत साबित किया जा सके। इसलिए यह ... से बचता है। इसलिए यह लॉजिकल पॉज़िटिविस्ट की आलोचना का विषय है। और फिर भी, यह यहाँ है।

इससे वह रुकता नहीं है। आप देखिए, प्रोफेसर की पलकें झपकती हैं। खैर, तीसरा व्यक्ति बेसिल मिशेल है, जो खुद ऑक्सफोर्ड में धर्मशास्त्री था।

बेसिल मिशेल, जिन्होंने अजनबी की एक और कहानी, एक और कहानी सुनाई। अजनबी की कहानी। और ध्यान रखें कि यह चालीस के दशक के आखिर में किया गया था।

और वह कब्ज़े वाले फ्रांस के बारे में बात कर रहा है। आप बस किसी को बताइए कि वे क्या कर रहे हैं और उन्हें अपने डायरेक्शन कहाँ से मिलते हैं। नहीं, और यह सच है कि उन्हें अपने डायरेक्शन मिलते हैं।

और उन्हें उनके अंडरग्राउंड कामों के लिए ज़रूरी मिलिट्री सप्लाई दी जाती है। और वे बताते हैं कि वे ऐसा इसलिए कर रहे हैं क्योंकि एक अजनबी आया था। एक अजनबी जिसने उन्हें बुरे कब्ज़ा करने वालों के खिलाफ लड़ने के लिए कहा था।

कि वह उन्हें साधन देगा और पूरी जीत हासिल करने के लिए वह फिर आएगा। और क्योंकि उन्होंने अजनबी पर विश्वास किया, इसलिए वे इस तरह का व्यवहार करते हैं। अब, ज़ाहिर है, धर्मशास्त्री उस मसीह के बारे में बात कर रहा है जो आया था और दूसरे आगमन के बारे में जिसका वादा किया गया है, जो पूरी जीत हासिल करेगा।

लेकिन अजनबी की बातों, वादों, कामों और पर्सनैलिटी से जो इंप्रेशन बनता है, वह ऐसा होता है कि वे पूरी तरह से यकीन कर लेते हैं। इसलिए भले ही इस समय अजनबी के बारे में उनकी बात को एंपिरिकल वेरिफिकेशन या गलत साबित करने लायक न हो, लेकिन यह निश्चित रूप से उनके व्यवहार को समझाता है। तो इन तीनों मामलों में आपके पास एक कहानी है जो धार्मिक लोगों के विश्वासों और व्यवहारों को समझाने के लिए बताई गई है।

साबित नहीं हो सकती । हालांकि आप देख सकते हैं कि अजनबी के बारे में कहानी असल में भविष्य में साबित हो सकती है। जिसे बाद में जॉन हिक ने एस्केटोलॉजिकल वेरिफिकेशन कहा।

इस तरह से वेरिफ़िकेशन तो है। ठीक है। लेकिन बात यह है कि इन तीनों अकाउंट्स में, कहा जाता है कि असलियत वाली भाषा का इस्तेमाल बहुत ज़्यादा ढीला-ढाला है।

तीनों ही मामलों में, या तो माली, किसी अजनबी, या किसी संभावित हत्यारे के बारे में बात की गई है। आप समझे? इनमें से हर मामले में, एक तथ्यात्मक बयान दिया जा रहा है जो लॉजिकल पॉज़िटिविस्ट क्राइटेरिया को पास नहीं कर सकता । और इस चर्चा को चल रही बहस के लिए प्रेरणा के तौर पर बड़े पैमाने पर स्वीकार किया गया।

यह आम भाषा के नज़रिए को दिखाता है कि पॉज़िटिविस्ट क्राइटेरिया बहुत ज़्यादा छोटा और छोटा है। भाषा के कई बड़े इस्तेमाल हैं, यहाँ तक कि असल भाषा के भी, जिन्हें पॉज़िटिविस्ट समझ नहीं पाता । अब, अगले दस सालों में, 50 के दशक तक, जो कुछ और नज़रिए बने, असल में, 50 के दशक तक धर्म की फ़िलॉसफ़ी में यही मुद्दा था, जब तक कि 60 के दशक में दूसरे सवाल उठने शुरू नहीं हो गए।

कुछ और विचार भी काफी दिलचस्प हैं। कैम्ब्रिज में ब्रेथवेट नाम के एक प्रोफेसर थे जिन्होंने कहा था कि धार्मिक भाषा का मतलब बस गलत कमिटमेंट्स से है। मुझे याद है कि एक बार मैंने उन्हें यह कहते हुए सुना था कि जब वह चर्च जाते हैं और अपॉस्टल्स क्रीड पढ़ते हैं, तो मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर में विश्वास करता हूँ, असल में वह बस एक खास तरह की ज़िंदगी के लिए खुद को कमिट कर रहे होते हैं।

उन बातों की सच्चाई के लिए नहीं जिन पर पारंपरिक रूप से ज़िंदगी जीने का तरीका आधारित रहा है, बल्कि बस एक खास तरह की ज़िंदगी के लिए खुद को कमिट करना। अगर आप चाहें तो धर्म को नैतिक ज़िम्मेदारियों का एक सिंबॉलिक एक्सप्रेशन मानते हुए कांटियन नज़रिया अपना सकते हैं। अलास्डेयर मैकइंटायर, हाँ, वही मैकइंटायर जिनके बारे में हम अब वर्च्यू एथिक्स वगैरह के मामले में सुनते हैं, जो अब नोट्रे डेम में हैं, अलास्डेयर मैकइंटायर उस समय एक युवा स्कॉच-आयरिश प्रोफ़ेसर थे, और उन्होंने यह बनाए रखने की कोशिश की कि धार्मिक भाषा अपने आप में एक खास भाषा का खेल है।

कहने का मतलब है, धार्मिक इस्तेमाल बाकी सभी इस्तेमाल से अलग हैं। इसे नैतिक भाषा में नहीं बदला जा सकता, इसे मेटाफिजिकल भाषा में नहीं बदला जा सकता। उन्होंने इसे खासियत वाला कहा।

और इसलिए वह जिस बात के लिए बहस कर रहे थे, वह एक अजीबोगरीब बात थी। और हाँ, अगर धार्मिक भाषा अजीबोगरीब है और उसमें कोई एंपिरिकल चीज़ें नहीं हैं, तो वह किसी भी तरह के एंपिरिकल सबूत के लायक नहीं है। आपको शायद जल्दी पता चल जाएगा कि वह उस मोड़ पर बार्थियन तरह की थियोलॉजी के साथ आ रहे थे, जिसमें नेचुरल थियोलॉजी और भगवान के होने का कोई भी लॉजिकल सबूत बस सही नहीं था।

और इसलिए यह अजीबोगरीब बातें काफी थीं। अब, इसी संदर्भ में, एक और व्यक्ति, पॉल वैन ब्यूरन, जो उस समय, मुझे लगता है, टेम्पल यूनिवर्सिटी में थे, ने 'द सेक्युलर मीनिंग ऑफ़ द गॉस्पेल' नाम की एक किताब पब्लिश की। 'द सेक्युलर मीनिंग ऑफ़ द गॉस्पेल'।

जिससे 'डेथ ऑफ़ गॉड थियोलॉजी' शुरू हुई, जैसा कि 50 के दशक के आखिर और 60 के दशक की शुरुआत में कहा जाता था। 'डेथ ऑफ़ गॉड थियोलॉजी'। उनका कहना था कि एक सेक्युलर युग में, एक सेक्युलर साइंटिफिक युग में, हमें धार्मिक भाषा का नया मतलब निकालना होगा ।

हमें धार्मिक भाषा का नया मतलब निकालना होगा । भगवान की भाषा, अपने पारंपरिक सुपरनैचुरलिस्ट मतलब में, अपने मेटाफिजिकल मतलब में, भगवान की भाषा एक मरी हुई भाषा है जिसका सेक्युलर साइंटिफिक युग में कोई मतलब नहीं है। क्यों नहीं? क्योंकि जिस भी चीज़ का असल मतलब होता है, उसे एंपिरिकल वेरिफिकेशन से साबित किया जा सकता है।

तो, वेरिफ़िएबिलिटी प्रिंसिपल के आधार पर , वह कह रहे थे कि भगवान मर चुके हैं। और उनका मतलब यह था कि पारंपरिक तरह की भगवान की भाषा एक मरी हुई भाषा है। इसका कोई मतलब नहीं है।

और इसलिए, हम गॉस्पेल का जो मतलब निकालते हैं, वह असल में एक तरह का सेक्युलर ह्यूमनिज़्म है। यह एक ऐसी भाषा है जो दूसरे कमिटमेंट्स और चिंताओं को छिपाती है। खैर, तो, कई तरह के ऑप्शन खोजे गए।

और जब तक आप, ठीक-ठाक , 50s के आखिर तक पहुँचते हैं, लॉजिकल पॉजिटिविज्म अपने चरम पर पहुँच गया लगता है, कम हो रहा है, और धर्म की फिलॉसफी पूरी तरह से सही होकर वापस आ रही है। चलिए देखते हैं, मैं विलियम एलस्टन से मिला, जो अब इस देश में धर्म की फिलॉसफी में सबसे आगे रहने वालों में से एक हैं। मैं उनसे सबसे पहले 50s के आखिर में मिला था, जब वह मिशिगन यूनिवर्सिटी में धर्म की फिलॉसफी पढ़ाने वाले एक एग्नोस्टिक थे।

अब, जैसा कि मैंने कहा, वह धर्म की फिलॉसफी में जाने-माने लोगों में से एक हैं, जो धार्मिक अनुभव के आधार पर भगवान के होने के तर्क पर काम कर रहे हैं। इसे शुरू करने वाले दूसरे शुरुआती लोगों में से एक जॉर्ज मावरोडिस थे, जिन्होंने 50 के दशक के आखिर और 60 के दशक की शुरुआत में 'बिलीफ इन गॉड' नाम की एक छोटी किताब पब्लिश की थी, जो फिर से इस तरह की बात कह पाई। तो धर्म की फिलॉसफी में एक नई तेज़ी 50 के दशक के आखिर में, 60 के दशक की शुरुआत में शुरू हुई, और अब, जैसा कि आप में से ज़्यादातर लोग जानते हैं, यह शायद तब से अपने सबसे बड़े लेवल पर पहुँच गई है, जिसमें न सिर्फ़ धर्म की फिलॉसफी में, बल्कि फिलॉसॉफिकल थियोलॉजी में भी काम हो रहा है, और कोई यह कहने के बारे में नहीं सोचता कि यह बेकार है क्योंकि इसे एंपिरिकली वेरिफाई नहीं किया जा सकता।

तो इससे हमें भाषा के इस्तेमाल की बड़ी वैरायटी का पता चलता है। अब, इस इंट्रोडक्शन के साथ, मैं बाद के विट्गेन्स्टाइन के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ, क्योंकि कई तरह से यह उनकी प्रेरणा थी, फिलॉसॉफिकल इन्वेस्टिगेशन में उनका काम था, जिसने इसे जन्म दिया। यह किताब 1953 में इंग्लिश में पब्लिश हुई थी।

इसका पहला भाग 1945 में जर्मन में पब्लिश हुआ था। तो आप देख सकते हैं कि यह उसी समय हो रहा था जब मैंने जिन बदलावों का ज़िक्र किया है, वे हो रहे थे। अब, विट्गेन्स्टाइन भाषा को एक तरह के सोशल बिहेवियर के तौर पर देखते हैं।

कहने का मतलब है, भाषा सिर्फ़ दो कामों से नहीं जुड़ी है, कॉग्निटिव और इमोशनल, जैसा कि पॉज़िटिविस्ट कहते हैं। बल्कि यह एक सोशल चीज़ है जिसका इस्तेमाल हर तरह से अलग-अलग तरीकों से किया जाता है। ज़िंदगी के कई रूप होते हैं, इंसानी ज़िंदगी के कई रूप होते हैं।

भाषा एक टूल है जिसका इस्तेमाल होता है; कोई भी इंसान जिस भी तरह की ज़िंदगी में शामिल हो, उसमें इसका एक काम होता है। और इसलिए, जिसे वह भाषा के खेल कहते हैं, उसमें बहुत तरह के खेल होते हैं, ऐसे खेल जिन्हें आप खेल सकते हैं। यह एक उदाहरण है जिसे वह इस बात से लेते हैं कि आप, मान लीजिए, कुछ खास कार्ड, ताश के पत्तों का एक डेक ले सकते हैं, और ताश के पत्तों से कई गेम खेल सकते हैं।

तो, हर तरह के कार्ड गेम्स हैं। खैर, और ज़ाहिर है, आप इंग्लिश भाषा सीख सकते हैं और हर तरह की चीज़ें कर सकते हैं, इंग्लिश भाषा के साथ हर तरह के गेम्स खेल सकते हैं, लैंग्वेज गेम्स। अब, मैं कुछ हिस्से पढ़ता हूँ, जिससे, खैर, आपको उनका स्टाइल और वह क्या कर रहे हैं, दोनों समझ में आ जाएगा।

वह कहते हैं, एक टूलबॉक्स में रखे टूल्स के बारे में सोचो। इसमें एक हथौड़ा, प्लायर, एक आरी, एक स्क्रूड्राइवर, एक रूल, एक ग्लू पॉट, ग्लू, कीलें, स्क्रू होते हैं, और शब्दों के काम भी इन चीज़ों के काम जितने ही अलग-अलग होते हैं। तो आप भाषा को एक ऐसे टूलबॉक्स की तरह सोचो जिसमें हर तरह के काम करने के लिए टूल्स होते हैं, सिर्फ़ एक या दो नहीं।

या फिर, कुछ पेज बाद, कितने तरह के सेंटेंस होते हैं? अब, वह प्रपोज़िशन नहीं कह रहा है। प्रपोज़िशन बस एक तरह की चीज़ है। सेंटेंस, लैंग्वेज फॉर्म।

वाक्य कितने तरह के होते हैं? मान लीजिए, दावा, सवाल, आदेश। ओह, अनगिनत तरह के होते हैं, अलग-अलग तरह के इस्तेमाल। और यह ज़्यादा होना कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो हमेशा के लिए तय हो जाए, क्योंकि नई तरह की भाषा, नए भाषा के खेल आते हैं, और दूसरे पुराने हो जाते हैं और भुला दिए जाते हैं।

लैंग्वेज गेम शब्द का मतलब यह बताना है कि भाषा बोलना एक एक्टिविटी, एक व्यवहार, जीवन का एक रूप है। अब, नीचे दिए गए उदाहरणों में लैंग्वेज गेम्स की कई तरह की चीज़ों को देखें। ऑर्डर देना और उनका पालन करना।

किसी चीज़ का रूप-रंग बताना, उसका माप देना। किसी विवरण, चित्र से कोई चीज़ बनाना। किसी घटना की रिपोर्ट करना।

किसी घटना के बारे में अंदाज़ा लगाना। हाइपोथीसिस बनाना और उसे टेस्ट करना। एक्सपेरिमेंट के नतीजे दिखाना।

कहानी बनाना। कहानी पढ़ना। नाटक में एक्टिंग करना।

कैच में गाना। पहेलियां बुझाना। मज़ाक करना।

अरिथमेटिक में प्रॉब्लम सॉल्व करना। एक भाषा से दूसरी भाषा में ट्रांसलेट करना। पूछना।

धन्यवाद । शाप । अभिवादन ।

प्रार्थना करना। आप जानते हैं, वह तुरंत कहते हैं, ये तो बस कुछ ही हैं। क्योंकि यहाँ आपके पास अलग-अलग व्यवहार हैं, अलग-अलग व्यवहार जिनमें भाषा का अलग-अलग इस्तेमाल होता है, न कि कम करने वाला नज़रिया।

और वह यह बात कहते हैं कि उनकी चिंता यह है कि हम भाषा के अलग-अलग इस्तेमाल को कन्फ्यूज़ न करें और इस तरह, ऐसी लॉजिकल पहेलियाँ और प्रॉब्लम न खड़ी करें जो असल में प्रॉब्लम ही न हों , बल्कि बस भाषा के गलत इस्तेमाल से पैदा हों। वह इसे इस तरह कहते हैं। फिलॉसफर का काम किसी खास मकसद के लिए रिमाइंडर इकट्ठा करना होता है।

अगर आप फिलॉसफी की थीसिस को आगे बढ़ाने की कोशिश करते, तो उन पर सवाल उठाना कभी मुमकिन नहीं होता क्योंकि वे शब्दों के बारे में होतीं और हर कोई उनसे सहमत होता। इसलिए फिलॉसफी अपनी खुद की थ्योरी नहीं बनाती। यह अभी भी एक थेराप्यूटिक तरह की एक्टिविटी है।

समस्याओं को सुलझाना। उनके सवाल का जवाब, हम बोतल से मक्खी कैसे निकालते हैं? क्या कभी बोतल में मक्खी घुस गई है और उसे बाहर निकालना पड़ा है ? आप बोतल से मक्खी कैसे निकालते हैं? पहेली। तो फिलॉसफी असल में कन्फ्यूजन दूर करने के इस काम में है। इंसानी व्यवहार और इंसानी भाषा के व्यवहार के लिए एक बहुत ज़्यादा ढीले, बड़े तरह के अनुभवजन्य नज़रिए के आधार पर ।

अब एक उदाहरण जो वह इस्तेमाल करते हैं, वह मदद कर सकता है। उनके पास एक छोटी सी किताब है जो असल में उनके दिए गए कुछ लेक्चर से ली गई है, जिसका नाम है अनसर्टेनिटी। अब ज़ाहिर है कि टॉपिक एपिस्टेमोलॉजी है।

और वह जो कर रहे हैं, वह एनलाइटनमेंट एपिस्टेमोलॉजी की एक मांग को पूरा करना है। निश्चितता की मांग। अगर आप चाहें, तो वह एक पोस्ट-मॉडर्न हैं, जो एनलाइटनमेंट एपिस्टेमोलॉजी की आलोचना करते हैं।

अब वह ब्रिटिश एकेडमी के सामने जीई मूर के मशहूर लेक्चर का ज़िक्र करते हुए शुरू करते हैं जिसमें वह यह साबित करने वाले थे कि दो मैटेरियल चीज़ें मौजूद हैं। याद रखें, यहाँ एक है। यहाँ एक हाथ है।

मुझे पता है कि यह एक हाथ है। अब जब हम ऐसा कुछ कहते हैं तो हमारा क्या मतलब होता है? मुझे पता है कि यह एक हाथ है। जहाँ मेरा व्यवहार और मूर का व्यवहार दिखाता है कि वे जानते हैं कि यह एक हाथ है।

और ये शब्द बस इसे दोहराते हैं। खैर इसका मतलब है, इस पर शक करने का कोई मतलब नहीं है । इस पर शक करने का कोई मतलब नहीं है कि यह एक हाथ है।

मुझे पता है, यह एक तरह की गारंटी है जो मैं आपको देता हूँ । मेरा पर्सनल भरोसा कि यह एक हाथ है, कोई झूठ या कुछ और नहीं, मैं बस आपको बता रहा हूँ। लेकिन इसके अलावा, यह दावा कि मुझे पता है, यह दावा कर रहा है कि दुनिया की पूरी तस्वीर असल में सही है।

मुझे पता है कि यह एक बहुत बड़े, एक जैसे नज़रिए का हिस्सा है जिसमें कुछ बेसिक विश्वास होते हैं, जैसा कि वह उन्हें कहते हैं। तो उनके पास, अगर आप चाहें तो, एक कॉमन सेंस

रियलिज़्म है जिसके लिए इसमें शामिल बोलचाल के व्यवहार से तर्क दिया जाता है। वह राइल हैं।

मैं अपनी बात वापस लेता हूँ । वो विट्गेन्स्टाइन हैं। अब गिल्बर्ट राइल के बारे में कुछ शब्द जो 50 और 60 के दशक तक पब्लिश करते रहे ।

उनकी दो किताबों का ज़िक्र करूँगा। एक का नाम है डिलेमाज़, और दूसरी का नाम है कॉन्सेप्ट ऑफ़ माइंड। डिलेमाज़, हाँ, यह फिलॉसॉफिकल झगड़ों, फिलॉसॉफिकल समस्याओं, रियलिज़्म बनाम आइडियलिज़्म, आज़ादी और डिटरमिनिज़्म, मन और शरीर, साइंस और धर्म के बारे में है, जो सही है।

और उन्हें विकल्प के तौर पर पेश करना आपको मुश्किल में डाल देता है। खैर, इन मुश्किलों पर उनकी एक पूरी किताब है। और उनका कहना है कि ये गलत मुश्किलें हैं, नकली परेशानियां हैं।

भाषा किस क्षेत्र में आती है, इस पर विवाद हैं। वे उसे दिखाते हैं जिसे वह कहते हैं, और यह एक ऐसी बात है जिसके लिए राइल काफी मशहूर हैं, वे कैटेगरी की गलतियाँ दिखाते हैं। कैटेगरी की गलतियाँ।

जहां एक शब्द का इस्तेमाल दो अलग-अलग कैटेगरी में किया जाता है, ताकि आप गोलमोल बातें कर रहे हों और कोई असली झगड़ा न हो। अब वह कैटेगरी के बारे में बता रहे हैं, और वह अलग-अलग लैंग्वेज गेम्स की बात कर रहे हैं। अलग-अलग लैंग्वेज गेम्स में इस्तेमाल होने वाले शब्द कभी-कभी लैंग्वेज गेम्स के बारे में कन्फ्यूजन पैदा कर सकते हैं।

लेकिन वह बताते हैं कि उनका क्या मतलब है। उदाहरण के लिए, क्रिकेट का वह मशहूर, लायक, मज़ेदार ब्रिटिश खेल लें। वह कहते हैं, ठीक है, बैट्समैन होता है, बॉलर होता है, मैं उसे पिचर कहूंगा।

ये विकेट हैं, ये मैदान में लगी स्टिक्स हैं। ये पिच है, ये बीच के 21 यार्ड्स हैं। लेकिन टीम स्पिरिट कहाँ है? ओह, वो एक अलग कैटेगरी में है।

यह दूसरी चीज़ों की तरह कोई एंपिरिकल चीज़ नहीं है। इसलिए उनका मानना है कि इसी तरह फिलॉसॉफिकल प्रॉब्लम पैदा होती हैं, सेंस परसेप्शन की प्रॉब्लम। क्या हम मैटेरियल चीज़ों को देखते हैं या सिर्फ़ सेंस डेटा को? खैर, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप न्यूरोफिज़ियोलॉजी की भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं या आम अनुभव का।

अगर आप आम अनुभव के हिसाब से परसेप्शन की बात कर रहे हैं, तो लैंग्वेज गेम ऐसा है कि आप मैटेरियल चीज़ें देखते हैं। अगर आप न्यूरोफिज़ियोलॉजी के हिसाब से सेंस परसेप्शन की बात कर रहे हैं, तो लैंग्वेज गेम ऐसा है कि आप सेंस डेटा देखते हैं। फ्रीडम और डिटरमिनिज़्म के बारे में क्या? खैर, अगर आप कॉज़ल कंडीशन के हिसाब से इंसानी व्यवहार की बात करते हैं, तो डिटरमिनिस्ट यही करता है।

लेकिन अगर आप ज़िम्मेदारी के मामले में उन्हीं व्यवहारों की बात करते हैं, तो इंडिटरमिनिस्ट वही करता है। आप उन्हीं चीज़ों के बारे में बात कर सकते हैं और दो अलग-अलग गेम खेल सकते हैं, डिटरमिनिस्ट गेम और इंडिटरमिनिस्ट गेम। साइंस और धर्म भी ऐसा ही करते हैं।

मन और शरीर भी वैसे ही हैं। अब, कुछ लोगों ने यह बात समझ ली है और कहा है, ओह, ठीक है, तो दो भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हो सकती हैं। और इसलिए वे साइंटिफिक पूरकता सिद्धांत का इस्तेमाल करते हैं।

का कॉम्प्लिमेंटेरिटी प्रिंसिपल याद है ? हम लाइट के ट्रांसमिट होने के तरीके को कैसे बताते हैं? क्या यह वेव्स में ट्रांसमिट होती है या पार्टिकल्स में? तो, यह या तो या क्यों होना चाहिए? कॉम्प्लिमेंटेरिटी का मतलब है वेविकल्स। दो कॉम्प्लिमेंट्री चीज़ें हैं, एक ही चीज़ की कॉम्प्लिमेंट्री तस्वीरें। इस मामले में इसका क्या मतलब हो सकता है? खैर, मन के अपने कॉन्सेप्ट में, वह बिल्कुल भी साफ़ नहीं है कि यह एक ही है, क्योंकि वहाँ वह मन-शरीर की समस्या के बारे में बात करता है।

और वह जो करने की कोशिश कर रहा है, वह है मैप बनाना, और यहाँ वोकैबुलरी पर ध्यान दें, वह लॉजिकल ज्योग्राफी को मैप बनाने की कोशिश कर रहा है। यह एक बहुत जाना-पहचाना, पॉपुलर फ्रेज़ है। जब आप चीज़ों को सॉर्ट आउट करने की कोशिश कर रहे होते हैं तो आप लॉजिकल ज्योग्राफी कर रहे होते हैं।

और अगर आप लॉजिकल ज्योग्राफी कर रहे हैं, तो आप कुछ मैप वर्क करने की कोशिश कर रहे हैं। तो आप मन के बारे में हमारे पास पहले से मौजूद ज्ञान की लॉजिकल ज्योग्राफी का मैप बनाने की कोशिश कर रहे हैं। आप कुछ नई जानकारी खोजने की कोशिश कर रहे हैं।

लेकिन हमारे पास पहले से मौजूद ज्ञान की ज्योग्राफी का मैप बनाना। पहले से मौजूद है? हाँ, हमारी भाषा के व्यवहार में। क्योंकि जिस तरह से हम भाषा का इस्तेमाल करते हैं , वह सदियों से भाषा के इतिहास में डेवलप हुआ है , उसे आज़माया गया है, बेहतर बनाया गया है और परखा गया है।

और इसलिए यह उन व्यवहारों के अंदर हर तरह की छिपी हुई जानकारी को छिपाता है। और वह मन के कॉन्सेप्ट में जो करने की कोशिश कर रहा है, वह उस छिपी हुई जानकारी को मैप करना है। अब, आप ध्यान दें कि मन और शरीर दोनों ही नाउन हैं।

और इसलिए हम मन और शरीर को दो अलग-अलग चीज़ें मानने की आदत में पड़ जाते हैं। मेंटल स्टेट और फिजिकल स्टेट को चीज़ों की दो अलग-अलग कैटेगरी मानते हैं। यह सब सिर्फ़ इसलिए क्योंकि मन और शरीर दोनों नाउन हैं।

भाषा के व्यवहार में शब्दों के असली इस्तेमाल को समझने के बजाय, ऊपरी ग्रामर की समानता से गुमराह किया जाता है। इसलिए उनका सुझाव है कि हमें मन की भाषा और शरीर की भाषा के हिसाब से सोचना चाहिए, जो पब्लिक व्यवहार से अलग प्राइवेट व्यवहार से जुड़ी हैं। सचेत व्यवहार फिजिकल व्यवहार से अलग हैं।

तो ये इमोशन और मकसद बस कुछ खास तरीकों से बर्ताव करने की निजी इच्छाएं हैं। ये सब्जेक्टिव बिहेवियर हैं जो हमें कुछ खास ऑब्जेक्टिव बिहेवियर की ओर ले जाते हैं। और जब आप कहते हैं, LA में जो हो रहा है उससे मैं गुस्से में हूं, तो आप कुछ ऐसा कह रहे हैं, मैं किसी पर चिल्लाना चाहता हूं ।

आप कहते हैं कि प्राइवेट फीलिंग खुले व्यवहार की तरफ झुकाव है। खैर, इस तरह, वह मन और मेंटल एक्टिविटी के बारे में सभी बातों को बिहेवियरल बातों में बदल देता है। तो वह माइंड-बॉडी प्रॉब्लम का एक वर्जन लेकर आता है जिसे लिंग्विस्टिक बिहेवियरलिज़्म के नाम से जाना जाता है ।

माइंड लैंग्वेज बस प्राइवेट बिहेवियर के बारे में भाषा है। लिंग्विस्टिक बिहेवियरलिज़्म । मेटाफिजिकल भाषा नहीं, नहीं।

लेकिन मेंटल भाषा असल या सोचे-समझे या शरीर के होने वाले व्यवहार के बारे में होती है। इस तरह। खैर, यह उनकी किताब थी, 'द कॉन्सेप्ट ऑफ़ माइंड', जिसने मन की फिलॉसफी पर एक बहस शुरू की जो 1950 के दशक से आज तक चल रही है।

और आप में से कुछ लोग फिलॉसफी ऑफ़ माइंड के कोर्स कर रहे हैं, तो आप इसके बारे में कुछ जानते हैं। वैसे, फिलॉसफी ऑफ़ माइंड के लिए हाल ही में हमारे पास दो तरीके रहे हैं। हमारे पास वह कोर्स था जो रॉबर्ट्स ने किया था, जो साइकोलॉजिकल स्टेट्स के मामले में फिलॉसफी ऑफ़ माइंड से कहीं ज़्यादा है।

इमोशन, अंदर का मूड। ठीक है। और आपने शायद ध्यान दिया होगा कि रॉबर्ट्स का इससे निपटने का तरीका इस बात का एनालिसिस करना है कि जब हम कहते हैं तो हमारा क्या मतलब होता है, जब हम कहते हैं तो हम क्या कर रहे होते हैं, जब हम कहते हैं तो हमारे मन में क्या होता है।

देखिए, क्योंकि उनका फिलॉसफी का तरीका विट्गेन्स्टाइन की इस आम भाषा की टेक्नीक से बहुत ज़्यादा प्रभावित है। वह कभी-कभी विट्गेन्स्टाइन का कोर्स पढ़ाते हैं, जो उन्होंने येल में पॉल होलमैन के अंडर में अपने ग्रेजुएट काम में सीखा था। देखिए।

तो यह एक ऐसा तरीका है जिसे वह बहुत असरदार तरीके से इस्तेमाल करते हैं, बिना किसी लिमिटेशन के जो कुछ लोगों के पास मेटाफ़िज़िक्स को लेकर होती हैं। दूसरी ओर, अगर आपने मन की फ़िलॉसफ़ी से जुड़ी कुछ चीज़ें की हैं, जो ओ'कॉनर आज के मेटाफ़िज़िक्स में करते हैं, तो आप देखेंगे, आपके पास एक अलग तरीका है। लेकिन बात यह है कि पोस्ट-पॉज़िटिविस्ट मेटाफ़िज़िक्स के डेवलपमेंट में, मन की फ़िलॉसफ़ी का मेटाफ़िज़िकल साइड और मन की फ़िलॉसफ़ी का फ़िलॉसफ़िकल साइकोलॉजी साइड भी डेवलप हुआ है।

तो रॉबर्ट्स की दिलचस्पी फिलॉसॉफिकल साइकोलॉजी साइड में है, गिल्बर्ट राइल, विट्गेन्स्टाइन की परंपरा में ज़्यादा। और ओ'कॉनर का नज़रिया साइंस की फिलॉसफी के संबंध में मेटाफिजिकल साइड में ज़्यादा है । डेविड।

नहीं, वह, आप जानते हैं, अगर आप उससे यह पूछने की कोशिश करेंगे कि आपके मन के बारे में क्या विचार है , तो मुझे लगता है कि वह एक तरह का एपिफेनोमेनलिस्ट निकलेगा। कहने का मतलब है, इन दिमागी प्रोसेस के पीछे की असलियत क्या है? और कुछ दिमागी घटनाएं हैं जो दिमागी प्रोसेस के साइड इफ़ेक्ट हैं।

तो मुझे लगता है कि राइल एक तरह के एपिफेनोमेनलिस्ट हैं। अब, कभी-कभी उन्हें बिहेवियरिस्ट भी कहा जाता है, लेकिन सिर्फ़ तभी जब आपके पास लिंग्विस्टिक बिहेवियरिज़्म की प्रस्तावना हो । मन के बारे में बात करना प्राइवेट या पब्लिक बिहेवियर के बारे में बात करना है ।

और उनका मानना है कि मन के बारे में भाषा को बिना किसी बचे हुए हिस्से के व्यवहार की भाषा में, व्यवहार के बारे में भाषा में ट्रांसलेट किया जा सकता है । तो यह फिर से ट्रांसलेटेबिलिटी वाली बात है। ठीक है, अब यह राइल था।

क्या आप कुछ देर रुककर सोचना चाहेंगे, इससे पहले कि मैं कुछ और कहूँ? उन्होंने एक ऐसी चीज़ बताई जो मशीन के कॉन्सेप्ट में काफी मशहूर हो गई है। उन्होंने डेसकार्टेस के मन के बारे में विचार को, जो किसी न किसी तरह शरीर में है, मशीन में भूत की कहानी जैसा बताया। अब यह कहावत, मशीन में भूत, मशहूर हो गई है।

और आप इसे हर तरह की चीज़ों में कोट करते हुए सुनते हैं। यह लगभग कोगिटो एगो सम जितना ही मशहूर है। सच में।

यह उन बातों में से एक है जिसे आप पत्रकार पकड़ लेते हैं, और इसी तरह आगे भी। मशीन में भूत की कहानी। वह बस यह तर्क दे रहा है कि सिर्फ़ इसलिए कि शब्द 'मन' और 'शरीर' दोनों ही नाउन हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि एक चीज़ के अंदर दूसरी चीज़ है।

देखा ? मशीन में भूत की कहानी। ठीक है, जिन तीन लोगों के बारे में मैं यहाँ बात कर रहा हूँ, उनमें से जेएल ऑस्टिन सबसे मज़ेदार हैं। यह कोई क्राइटेरिया नहीं है, कोई फिलॉसफी की समझ नहीं है, हालाँकि यह दवा का असर कम करने में ज़रूर मदद करता है।

सच में, ज़बरदस्त सेंस ऑफ़ ह्यूमर। 1955 में छपी उनकी किताब, 'हाउ टू डू थिंग्स विद वर्ड्स' में भाषा के अलग-अलग तरह के इस्तेमाल को सिस्टमैटिक तरीके से बताने की कोशिश की गई थी। दूसरे शब्दों में, उन्हें लगता है कि विट्गेन्स्टाइन ने जितने भी इस्तेमाल बताए हैं, उनमें बोलने के कुछ खास तरह हो सकते हैं।

और वह उन्हें इस तरह से सिस्टमैटिक करने की कोशिश करते हैं जो काफी असरदार रहा है। वह फर्क करते हैं, देखते हैं, वह अलग-अलग तरह के परफॉर्मेटिव बयानों से, यानी असेसमेंट

और प्रपोज़िशन के तौर पर कॉग्निटिव बयानों में फर्क करते हैं। आपको याद होगा मैंने कहा था कि आयर के अनुसार, यह बात, यह सच है कि, सिर्फ एक परफॉर्मेटिव बयान है।

इससे कुछ नहीं जुड़ता। कुछ कहने से बेहतर है कि कुछ किया जाए। यह एक परफ़ॉर्मेटिव बात है।

ठीक है, वह लोक्यूशनरी एक्ट्स, इलोक्यूशनरी एक्ट्स और परलोक्यूशनरी एक्ट्स के बारे में बात करते हैं। अब इन्हें ही हम आजकल लैंग्वेज एक्ट्स कहते हैं। वह फ्रेज, लैंग्वेज एक्ट्स, मुझे लगता है कि इसे जॉन सियरल ने बनाया था, जो बर्कले में पढ़ाते हैं, जॉन सियरल ने अपनी किताब, स्पीच एक्ट्स में।

ध्यान दें कि लैंग्वेज एक्ट्स की सोच में, स्पीच एक्ट्स का मतलब है कि लैंग्वेज का इस्तेमाल एक तरह का सोशल बिहेवियर है। ठीक है, तो लोक्यूशनरी को इललोक्यूशनरी से अलग करें। एक लोक्यूशनरी एक्ट बस कुछ कहने का एक एक्ट है।

बहुत आम कैटेगरी। एक लोक्यूशन, एक बात। लेकिन एक इललोक्यूशनरी एक्ट वह है जहाँ आप कुछ कहने का काम करते हैं, इसलिए इललोक्यूशनरी।

परलोक्यूशनरी, आप कुछ कहकर काम करते हैं। परलोक्यूशनरी। अब, उदाहरण के लिए, एक इलोक्यूशनरी काम, कहना ही काम है।

आप इसे कहने में एक्टिंग कर रहे हैं। एक फैसला सुना रहे हैं। एक सवाल का जवाब दे रहे हैं।

सलाह देना। जिस तरह से आप बात कर रहे हैं, उससे आप सलाह दे रहे हैं। परलोक्यूशनरी, भाषा सिर्फ़ एक ज़रिया है।

आप किसी को कुछ करने के लिए मना रहे हैं। आप किसी को कुछ करने से रोक रहे हैं। आप जो कह रहे हैं उससे किसी को परेशान कर रहे हैं।

ज़रूरी बात यह नहीं है कि आप क्या कह रहे हैं, बल्कि यह है कि आप इसे कहकर क्या हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं। आप कुछ और भी कह सकते थे, और वह भी काम कर सकता था। फिर से, हम जो अलग-अलग चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, उन पर आते हैं।

खैर, इस तरह की चीज़ें भाषा के कामों, भाषा के व्यवहार के बारे में बताती हैं, और इसे बहुत पॉपुलर बनाती हैं। लेकिन जेएल ऑस्टिन के बारे में एक और बात जिसमें आपकी दिलचस्पी होगी, वह है उनकी किताब सेंस एंड सेंसिबिलिया । अब, ध्यान दें कि नाम ऑस्टिन है।

क्या आप किसी और ऑस्टिन को जानते हैं? जेन ऑस्टिन, जिनकी किताब 'सेंस एंड सेंसिबिलिटी' थी। वह एक नॉवेल थी। यह हैं जे.एल. ऑस्टिन, 'सेंस एंड सेंसिबिलिया' ।

जेन नहीं, जॉन। सेंस और सेंसिबिलिया । बस टाइटल ही एक मज़ाक है, और ऑस्टिन की यही खासियत है।

मेरा मतलब यह नहीं है कि पूरी किताब एक मज़ाक है। मुझे लगता है कि यह एक परलोक्यूशनरी एक्ट है। वह भाषा के ज़रिए मज़ाक कह रहा है, जबकि वह कुछ और कर रहा है।

ठीक है। अब यह किताब ए.जे. आयर की सेंस डेटम थ्योरी पर हमला है। भाषा, सच्चाई और लॉजिक वाले ए.जे. आयर पर नहीं।

लेकिन मुझे लगता है कि AJ Ayer की किताब का मतलब है, The Foundations of Empirical Knowledge. क्योंकि Ayer ने यह नज़रिया बनाया, एक फेनोमेनलिस्ट नज़रिया, कि हम जो कुछ भी जानते हैं वह सेंस है। अब ऑस्टिन ने Sense and Sensibilia में तर्क दिया है कि ऐसा कुछ शब्दों के प्रति उनके जुनून और उनके इस्तेमाल को बहुत आसान बनाने की वजह से है।

ऐसे शब्द जो सेंस डेटा को दिखाते हैं, जैसे नीला, चौकोर, वगैरह। या लुक्स, अपीयर्स, और सम्स जैसे एक्सप्रेशन, जिन्हें तोड़-मरोड़कर यह मतलब निकाला जाता है कि आम सेंस परसेप्शन में ऐसा भ्रम होता है कि हम कभी पक्का नहीं कर सकते कि हम कोई चीज़ देख रहे हैं या नहीं। इसलिए हम कहते हैं कि यह अपीयर्स, यह दिखता है, यह लगता है।

ठीक है। तो उस आदमी के स्टाइल का कुछ अंदाज़ा लगाने के लिए, वह ऐसे शुरू करता है। इस डॉक्ट्रिन के बारे में मेरी आम राय यह है कि यह एक आम तौर पर स्कॉलैस्टिक नज़रिया है, जो पहले कुछ खास शब्दों के प्रति ऑब्सेशन से जुड़ा है और दूसरा कुछ आधे-अधूरे फैक्ट्स के प्रति ऑब्सेशन से।

सच तो यह है, जैसा कि मैं साफ़ करने की कोशिश करूँगा, हमारे आम शब्द इस्तेमाल में बहुत ज़्यादा बारीक होते हैं और फिलॉसफर की समझ से कहीं ज़्यादा फ़र्क करते हैं। और यह कि समझने की बातें, जैसा कि साइकोलॉजिस्ट ने खोजा है, लेकिन जैसा कि आम इंसानों ने भी देखा है, जितनी मानी जाती हैं, उससे कहीं ज़्यादा अलग-अलग तरह की और मुश्किल हैं। इसलिए मैं यह नहीं कहूँगा कि हमें यह मानने के लिए रियलिस्ट होना चाहिए कि हम चीज़ों को समझते हैं।

यह सवाल बहुत आसान है और पूरी तरह से गुमराह करने वाला है। ज़रूरी बात यह है कि ये दो शब्द, सेंस डेटा और मैटेरियल चीज़ें, एक-दूसरे की धुलाई करके जीते हैं। जो बात गलत है वह एक शब्द, सेंस डेटा नहीं, बल्कि दोनों का उल्टा है।

हम कोई एक तरह की चीज़ नहीं देखते, बल्कि बहुत अलग-अलग तरह की चीज़ें देखते हैं। अगर यह संख्या कम हो भी रही है, तो साइंटिफिक जांच से, न कि फिलॉसफी से। इसलिए हमें सबसे पहले बर्कले, ह्यूम, रसेल और आयर जैसे लोगों के कुछ भ्रमों से खुद को छुटकारा दिलाना है, जो सेंस डेटा की रिलेटिविटी के आधार पर भ्रम के तर्क पर काम करने में सबसे माहिर रहे हैं।

और इस तरह, वह असल में कॉमन-सेंस रियलिज़्म का बचाव करते हैं कि, सेंस डेटा देखने में, हम जो कर रहे हैं वह वैसे भी मैटेरियल चीज़ें देख रहे हैं। वह यहाँ हमला कर रहे हैं, चलो देखते

हैं, मुझे लगता है कि मैंने उसे मिटा दिया। वह एक ऐसे नज़रिए पर हमला कर रहे हैं जिसे आयर ने बनाया था जो लिंग्विस्टिक फेनोमेनलिज़्म था।

अब, राइल के पास एक लिंग्विस्टिक बिहेवियरिज़्म था। यानी, मन की भाषा को बिहेवियर की भाषा माना जा सकता है। आयर ने एक लिंग्विस्टिक फेनोमेननिज़्म डेवलप किया था।

कहने का मतलब है, सेंस परसेप्शन की भाषा का पूरा मतलब निकाला जा सकता है, और इसे सेंस डेटा फेनोमेनन की भाषा के अलावा कुछ नहीं माना जा सकता। लिंग्विस्टिक फेनोमेननिज़्म। दोनों ही मामलों में, तर्क असली ऑब्जेक्ट भाषा, मन, मैटर, के किसी दूसरी तरह की भाषा में ट्रांसलेटेबिलिटी पर टिका है।

इस मामले में इसका मतलब सेंस डेटा लैंग्वेज तक कम हो जाता है। और ऑस्टेन इसी बात के खिलाफ तर्क देते हैं, उनका कहना है कि भाषा के आम इस्तेमाल बिल्कुल अलग होते हैं। वे बहुत ज़्यादा बारीक होते हैं; वे हमें दोनों के बारे में बात करने में मदद करते हैं।

तो इस आम भाषा की फिलॉसफी में आपको क्या मिलता है, और मैं गिल्बर्ट, राइल और ऑस्टेन को और उदाहरण के तौर पर इस्तेमाल करता हूँ क्योंकि स्टॉट ने उनके बारे में बताया है। आपको जो मिलता है, वह है पूरे पॉजिटिविस्ट अप्रोच का ढीलापन, उस साइंटिफिक रिडक्शनिज्म का टूटना, वेरिफिएबिलिटी थ्योरी और जिस तरह से उसे पेश किया गया था, उसे रिजेक्ट करना। और इससे न सिर्फ धार्मिक भाषा, बल्कि मेटाफिजिकल भाषा, एथिकल भाषा, मन की फिलॉसफी, वगैरह भी फिर से सामने आती हैं।

और अगले हफ़्ते हम इसी पर बात करना चाहते हैं। मुझे पक्का नहीं पता कि हम इसे किस क्रम में लेंगे, मैं इस पर थोड़ा सोचूंगा। लेकिन हम यह देखना चाहेंगे कि जब से आयर ने एथिकल थ्योरी को खत्म करने का सोचा है, तब से उसका क्या हुआ है।

ज़रूर, भाषा की फिलॉसफी का क्या हुआ, क्योंकि ज़ाहिर है यही बात का निचोड़ है, और मन की फिलॉसफी का क्या हुआ। ये वो टॉपिक हैं जिन पर मैं बाकी बचे हुए समय में बात करना चाहूँगा। तीन मिनट।

कमेंट्स। क्या आप समझ रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ? काफ़ी साफ़ है? चीज़ों का ढीला होना, मेथड में बदलाव। मुझे लगता है, यह ध्यान देने वाली बात है कि सोच के इतिहास में फ़िलॉसफ़िकल शक के एक दौर के बाद, लोगों को एहसास होता है कि उन्हें अपने कंचों को नए कॉन्फ़िगरेशन में बदलना होगा और मेथड में बदलाव करने होंगे।

देखिए, सोफिस्ट के बाद, आपको प्लेटो का डायलेक्टिक मिलता है। हेलेनिस्ट के स्केप्टिसिज़्म के बाद, आपको उस तरह का डायलेक्टिक मिलता है जिसका इस्तेमाल ऑगस्टीन ने किया था, और चीज़ों में एक ईसाई नज़रिए का आना। रेनेसां के स्केप्टिसिज़्म ने बेकन और डेसकार्टेस के नए तरीके पैदा किए।

ह्यूम के स्केप्टिसिज़्म से कांट का ट्रांसेंडेंटल मेथड बना। ठीक है, इसी तरह, पॉज़िटिविस्ट का स्केप्टिसिज़्म, अगर आप इसे ऐसा कह सकते हैं, तो आम भाषा और उसके बाद से हो रहे बदलावों को जन्म दिया। ठीक है, चलिए आज का दिन यहीं खत्म करते हैं।